

## संस्कृतिकरण का शिक्षाशास्त्र

उषा शर्मा\*

शिक्षा और उससे जुड़ी अवधारणाएँ अपने मूल स्वभाव में बच्चों के संस्कार और उनमें अंतर्निहित क्षमताओं के परिमार्जन और परिष्करण से जुड़ी हुई हैं। ये अवधारणाएँ संस्कृतिकरण के अत्यंत दृष्टिगत होती हैं। शिक्षा अपने मूल रूप में मानव निर्माण की प्रक्रिया है और मानव निर्माण में मूल्यों और संस्कारों का विशेष महत्व है। ये मूल्य स्वयं में निरंतर परिवर्तशील होते हैं और किसी भी मनुष्य को उस स्तर पर पहुँचने में सहायक होते हैं जहाँ वे एक सुसंस्कृत मानव के रूप में अवस्थित हो सकें। सुसंस्कृत होने का अर्थ है— कल्याणकारी एवं तार्किक चिंतन, आचरण और व्यवहार जो किसी भी मनुष्य को एक सुसंस्कृत समाज का सदस्य बनने एवं समाज के कल्याण में अपनी महती भूमिका का निर्वाह करने में मदद करता है। प्रश्न यह है कि मानव निर्माण की यह प्रक्रिया कैसे संपन्न हो? ऐसा कौन-सा शिक्षाशास्त्र है जो इस प्रक्रिया को संपादित करने में सहायक होगा? इस प्रक्रिया में शिक्षक, शाला और अभिभावकों की क्या भूमिका होगी? प्रस्तुत लेख में इन्हीं प्रश्नों के उत्तरों के चिंतन और खोज का प्रयास किया गया है।

शिक्षा और उसका शास्त्र सदैव ही चिंतन के केंद्र बिंदु रहे हैं और उन्होंने अपने-अपने समाज को जिस तरह से आकार दिया है, जिस तरह से गढ़ा है, वह उसका प्रकार्यात्मक पक्ष है। वैसे शिक्षा और उसका समाज भी निरंतर शिक्षा चिंतन को प्रभावित करते रहे हैं। परस्पर एक-दूसरे की सहायतार्थ सदैव तत्पर और अनुगामी। इस अर्थ में शिक्षा और जीवन भी एक-दूसरे के पर्याय हैं और यही कारण है कि भारतीय संविधान में ये एक-दूसरे के साथ अपनी 'उपस्थिति' दर्ज करते हैं। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 जहाँ जीवन जीने का मौलिक अधिकार देता है वहीं अनुच्छेद 21A शिक्षा का मौलिक अधिकार देता है। हमारी संस्कृति हमारे इसी जीवन का अभिन्न हिस्सा है, एक के अभाव के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं

की जा सकती। अगर ऐसा हो जाता है तो यह केवल और केवल 'अराजकता' को ही आमंत्रित करता है। संस्कृतिविहीन समाज की कल्पना भी संभव नहीं है। और अगर यह संभव नहीं है तो फिर सवाल उठता है कि समाज को 'संस्कृत' करने का कार्य किसका है और यह कार्य कैसे संभव होगा? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है— शिक्षा।

### शिक्षा, शिक्षाशास्त्र और लक्ष्य

शिक्षा की अवधारणात्मक समझ के अनेक प्रस्थान बिंदु हैं जहाँ से अग्रसर होकर वह अनेक रूप और आकार ग्रहण करती है। शिक्षा केवल विषय की शिक्षा है या फिर जीवन जीने की शिक्षा है अथवा फिर जीवन जीने के लिए अपरिहार्य जीविकोपार्जन की शिक्षा है? क्या शिक्षा केवल डिग्री और रोजगार से बँधी हुई है

\* प्रोफेसर एवं प्रभारी, राष्ट्रीय साक्षरता केंद्र प्रकोष्ठ, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली

या फिर वह आत्मिक उन्नति का माध्यम है? सवाल उठता है अंततः कौन-सी शिक्षा? कैसी शिक्षा? वह शिक्षा जो स्कूल की चाहरदीवारी के भीतर 'कैद' है या वह शिक्षा जो अनवरत जारी रहती है। दरअसल 'शिक्षा' और 'स्कूलिंग' दो अलग अवधारणाएँ हैं। 'शिक्षा' एक बृहत् संकल्पना है और 'स्कूलिंग' संकीर्ण संकल्पना। एक जीवन को विस्तार देती है तो दूसरी जीवन को स्कूल की चाहरदीवारी से बाँधती है। (सिन्हा, 2019, पृष्ठ 13)। हम शिक्षा के दूसरे अर्थ के साथ स्वयं को अधिक सहज अनुभूत करते हैं। स्वामी विवेकानंद के अनुसार, 'शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। मानव में शक्तियाँ जन्म से ही विद्यमान रहती हैं। शिक्षा उन्हीं शक्तियों या गुणों का विकास करती है जो पूर्णतः बाहर से नहीं आती वरन् मनुष्य के भीतर छिपी रहती है। सभी प्रकार का ज्ञान मनुष्य की आत्मा में निहित रहता है। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत अपने प्रतिपादन के लिए न्यूटन की खोज की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था। वह न्यूटन के मस्तिष्क में पहले से ही विद्यमान था। जब समय आया तो न्यूटन ने केवल उसकी खोज की। विश्व का असीम ज्ञान-भंडार मानव मन में निहित है, बाहरी संसार केवल एक प्रेरक मात्र है, जो अपने ही मन का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है।' (शिक्षा, 1956, पृष्ठ 6)। शिक्षा की यह अवधारणा उसे व्यापक पटल पर अवस्थित तो करती ही है साथ ही शिक्षा के उद्देश्यों को भी व्याख्यायित करती है। शिक्षा की यह अवधारणा स्वयं के भीतर 'उतरने' स्वयं को जानने की अपेक्षा करती है। शिक्षा की यह व्यापक अवधारणा एक व्यापक शिक्षाशास्त्र की अपेक्षा करती है जो बच्चों के भीतर छिपी प्रतिभाओं को परिमार्जित, परिष्कृत

करने और उन्हें उजागर करने में मदद करे। चूँकि बच्चे भी विशिष्ट हैं, विलक्षण हैं और एक-दूसरे से भिन्न हैं तो शिक्षाशास्त्र में भी इतनी उदारता हो कि वह प्रत्येक बच्चे की विलक्षणता को संबल दे सके और उसे उन्नत कर सके। शिक्षा और शिक्षाशास्त्र का यही लक्ष्य है कि बच्चे अपनी क्षमताओं को निरंतर परिष्कृत करते रहें। यह परिष्कृत होना वस्तुतः संस्कृतिकरण की व्याप्ति में सम्मिलित है।

### संस्कृतिकरण की अवधारणा और शिक्षा

विगत अनेक दशकों में संस्कृतिकरण को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखने का प्रयास किया गया है। संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रतिपादन प्रोफ़ेसर एम. एन. श्रीनिवास ने किया है। इस अवधारणा के माध्यम से उन्होंने भारतीय संरचना एवं संस्तरण में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। प्रोफ़ेसर एम. एन. श्रीनिवास के अनुसार 'संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत कोई निम्न हिंदू जाति या कोई अन्य जनजाति अथवा समूह किसी उच्च और द्विज जाति की दिशा में अपने रीति-रिवाज, कर्मकांड, विचारधारा और जीवन पद्धति को बदल लेते हैं। संस्कृतिकरण का अर्थ सिर्फ नवीन प्रथाओं व आदतों को ग्रहण करना ही नहीं है। बल्कि इसका अर्थ पवित्र तथा लौकिक जीवन से संबंधित नए विचारों एवं मूल्यों को भी प्रकट करना है जिनका वितरण संस्कृत के विशाल साहित्य में बहुधा देखने को मिलता है। कर्म, धर्म, पाप, पुण्य, संसार, मोक्ष आदि संस्कृत के कुछ अत्यंत लोकप्रिय आध्यात्मिक विचार हैं। श्रीनिवास के उक्त स्पष्टीकरण का आशय है कि उच्च जाति का अनुसरण करके निम्न जाति अपने सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करती हैं

और इसी को 'संस्कृतिकरण' कहा जाता है।' प्रोफ़ेसर एम एन श्रीनिवास की संस्कृतिकरण की अवधारणा का विश्लेषण करने पर और उसे गहराई से देखने पर यह प्रतीत होता है कि यह अवधारणा एक ओर संकीर्ण दृष्टिगत होती है, जब वे उसे 'ब्राह्मणवाद' से जोड़ते हैं और 'जाति' के फेर में बाँध देते हैं। लेकिन एक उम्मीद की किरण वहाँ दृष्टिगत होती है जहाँ वे उसे नए विचारों, मूल्यों से जोड़कर देखते हैं। किसी भी अवधारणा की संकीर्णता न तो कल्याणकारी है और न ही स्वीकार्य। इसका मूल कारण यह है कि 'संस्कृति' की स्वयं की अवधारणा संकीर्ण नहीं है। अतः हम इस अवधारणा को समझने के लिए और अधिक गहराई में उतरते हैं और एक दृष्टि 'संस्कृति' पर भी डालते हैं।

वामन शिवराम आपटे के *संस्कृत-हिंदी कोश* (1977) के अनुसार 'संस्कृत' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है— सम+कृ+क्त यानी परिष्कृत, माँजकर चमकाया हुआ, आवर्धित, सुरचित, सुनिर्मित, सुसंपादित, अभिमंत्रित, जीवन में दीक्षित, श्रेष्ठ, सर्वोत्तम। इस अर्थ में संस्कृति एक व्यापक संकल्पना है यानी अपने समुदाय की चयनित श्रेष्ठ परंपराओं का परिचायक है। इस अर्थ में पठन संस्कृति, शांति की संस्कृति आदि इसी सर्वोत्तम और इस सर्वोत्तम के हस्तांतरण की चर्चा है। 'संस्कृति' में 'करण' का अर्थ हुआ— इस संस्कृति को आत्मसात करना— संस्कृतिकरण। यह ठीक वैसे ही है जैसे समाजीकरण की अवधारणा, जिसमें समाज के सदस्य समाज के नियम, मर्यादाओं और मूल्यों को आत्मसात करते हैं। यह किसी भी समाज की उन्नति और शांति के लिए अनिवार्य है। चांदकिरण सलूजा (2013, पृष्ठ 53)

के अनुसार, 'यह समाज के सदस्यों का संस्कृतिकरण अथवा सांस्कृतिक दृष्टि से समाजीकरण है।... शिक्षा और संस्कृति के परस्पर संबंध को शिक्षा के तत्व मीमांसक रूप में देखा जा सकता है। शिक्षा का एक प्रमुख प्रयोजन संस्कृति का विकास है तो संस्कृति का प्रयोजन क्या हो सकता है या संस्कृति के प्रयोजन का आधार क्या है?' उनके इस सवाल के जवाब में यही कहा जा सकता है कि संस्कृति का प्रयोजन मनुष्य के प्रयोजन से जुड़ा हुआ है। तो मनुष्य का प्रयोजन क्या है? मनुष्य का प्रयोजन है— सृष्टि को बेहतर बनाना, उसका संवर्धन, संरक्षण करना।

नृविज्ञान में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग अत्यंत व्यापक अर्थ में होता है। प्रसिद्ध मानव विज्ञानी मैलिनोव्स्की के अनुसार, 'मानव जाति की समस्त सामाजिक विरासत या मानव की समस्त संचित सृष्टि का ही नाम संस्कृति है।' फिर इस अर्थ में संस्कृति दो प्रकार की हो सकती है— भौतिक और अभौतिक संस्कृति। इन दोनों संस्कृतियों के संयुक्त विकास से परिष्करण, परिमार्जन को संस्कृतिकरण कहा जा सकता है। सामान्य शब्दों में कहें तो संस्कृतिकरण का अर्थ है— मानव को सुसंस्कृत बनाना। इसके लिए मूल्य, आदर्श, रहन, सहन, विचार, ज्ञान का उपयोग आदि उत्कृष्ट गुणों को आत्मसात करना ज़रूरी है। संस्कृतिकरण की यह अवधारणा व्यापक और कल्याणकारी है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* (पृष्ठ 4) भी इसी अवधारणा के अंतर्गत शिक्षार्थियों में संस्कृति और मूल्यों के समावेशन की चर्चा करती है ताकि शिक्षा से चरित्र-निर्माण हो सके, शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता, करुणा और संवेदनशीलता विकसित हो सके।

## संस्कृतिकरण का शिक्षाशास्त्र और भारतीय बच्चे

शिक्षाशास्त्र बच्चों के संस्कृतिकरण में कैसे मदद कर सकता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए इसमें आए कुछ शब्दों की जाँच-पड़ताल ज़रूरी है। इस प्रश्न में मुख्य रूप से शिक्षाशास्त्र, भारतीय बच्चे, संस्कृतिकरण शब्दों को ही ध्यान से देखने और परखने की ज़रूरत है। सर्वप्रथम, 'शिक्षाशास्त्र' का अर्थ है— शिक्षा का शास्त्र यानी सीखने-सिखाने का शास्त्र। 'शिक्षाशास्त्र' की अवधारणात्मक समझ बहुत व्यापक है और यह इतना सरल भी नहीं है। जब सीखने-सिखाने की बात उठती है तो फिर सीखने वाले यानी बच्चे के साथ उसका परिवार, उसका पड़ोस, उसका समाज, उसका विद्यालय, उसके शिक्षक और उसके साथी सभी महत्वपूर्ण हैं। इसका अर्थ यह है कि शिक्षा एक साझी जिम्मेदारी है और इसमें वह हर व्यक्ति शामिल है जो बच्चों से, उनकी शिक्षा से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। इसका अर्थ यह भी हुआ कि अगर शिक्षा 'स्कूलिंग' नहीं है तो फिर शिक्षाशास्त्र की जिम्मेदारी उन सब पर भी है जो 'स्कूल' से जुड़े हुए नहीं हैं, यानी माता-पिता, परिवार, समाज, दोस्त आदि सभी। इस संदर्भ में यह शंका उत्पन्न होती है कि क्या हम परवरिश को शिक्षाशास्त्र के दायरे में ला सकते हैं? इस शंका का मूल कारण यही है कि शिक्षा भी सीखने-सिखाने से जुड़ी हुई है और परवरिश भी बच्चों को एक अच्छा इंसान, एक जिम्मेदार नागरिक बनाने का लक्ष्य लेकर चलती है। (माटेसरी, मारिया 2004, पृष्ठ 13) परवरिश के मामले में समाज को भी उत्तरदायी मानते हुए कहती हैं कि, 'समाज को बच्चे पर ध्यान देना चाहिए।

यदि हम अपने अध्ययन का लक्ष्य स्वयं जीवन को बना लेंगे तो हमें पता चलेगा कि हमारे हाथ में मानव समाज का रहस्य आता जा रहा है। तब हमें स्वतः ज्ञान हो जाएगा कि जीवन को कैसे संचालित करें और कैसे उसकी सहायता करें। ऐसी शिक्षा की बात करते हुए हम भी एक क्रांति की घोषणा कर रहे हैं— एक ऐसी क्रांति जिसमें आज के समस्त ज्ञान की काया पलट हो जाएगी। मैं इसे अंतिम क्रांति के रूप में देखती हूँ... हमें तो मनुष्य के स्वाभाविक रूप की रक्षा करनी है। हमारा सारा प्रयास यही है कि बच्चों के विकास में आने वाली सब रुकावटों को दूर करें और उसे उन खतरों और गलतफ़हमियों से बचाएँ जो उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं।... यही शिक्षा है जिसका तात्पर्य जीवन की सहायता करना है।' इस अर्थ में बच्चों की परवरिश एक क्रांति है और अंतिम क्रांति है। इस क्रांति में हिंसा नहीं है और न ही रक्तपात। लेकिन यह क्रांति बच्चों को गढ़ने में मदद करती है। मारिया माटेसरी जहाँ परवरिश को क्रांति मानती हैं वहीं पवन सिन्हा (2015, पृष्ठ 13 एवं 16) परवरिश को और अधिक व्यापक आयाम देते हुए कहते हैं कि, 'मैं परवरिश को दो दृष्टियों से देखता हूँ— एक आध्यात्मिक और दूसरी व्यावहारिक। आध्यात्मिक दृष्टि से परवरिश ईश्वरीय आदेश है... जब स्त्री-पुरुष माता-पिता बनते हैं तो छोटे रूप में भगवान विष्णु और महालक्ष्मी की भूमिका अदा करते हैं। इसलिए यह बहुत महान दायित्व है और इस दायित्व को निभाना ही हमारा धर्म है। अगर मैं व्यावहारिक रूप में कहूँ तो परवरिश एक कला है और विज्ञान भी।... हम केवल उसके (बच्चे के) शरीर को ही बड़ा नहीं करते, बल्कि उसके मन को भी बड़ा करते हैं।... परवरिश के लिए

रोल मॉडल बहुत महत्वपूर्ण है।' इस अर्थ में परवरिश भी एक तरह का शिक्षाशास्त्र है जो बच्चों के व्यक्तित्व और मन को गढ़ने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। शिक्षा की परिभाषा और उससे जुड़े शिक्षाशास्त्र में जीवन, परवरिश, सृजन और चिंतन सम्मिलित हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण शब्द है— भारतीय बच्चे। 'बच्चे' शब्द के साथ 'भारतीय' विशेषण का जुड़ना इस पूरी चर्चा को 'भारत केंद्रित' बना देता है और 'भारत केंद्रित' होने का अर्थ है— हम शिक्षा, शिक्षाशास्त्र को एक संदर्भ दे रहे हैं। शिक्षा में संदर्भ की बात करने का अर्थ यह भी है कि शिक्षा समाज से जुड़ी अवधारणा है। शिक्षा और समाज एक-दूसरे को आकार ज़रूर देते हैं और एक-दूसरे के 'संवेगों', आवश्यकताओं का खयाल भी रखते हैं। वस्तुतः शिक्षा समाज के भीतर की 'वस्तु' है। समाज से इतर होकर उसकी स्वयं की पहचान और अस्मिता दोनों ही खतरे में पड़ जाते हैं। जब हम समाज की बात करते हैं तो उसका व्यापक दायरा राष्ट्र, देश तक जाता है। सिन्हा (2019) का मानना है कि देश के विप्लव का एक बड़ा कारण शिक्षा है। अगर शिक्षा विप्लव का कारण है तो सृजन का, उन्नति का भी कारण होगा। लेकिन अब 'भारतीय' शब्द को भी समझना होगा। जब कभी भी हम किसी विशिष्ट विशेषण का इस्तेमाल करते हैं तो हमारा पूरा केंद्र बिंदु वही बन जाता है। उस विशिष्ट संदर्भ की समस्याएँ, चिंताएँ, गुण, अवगुण, समाधान सभी कुछ बेहद विशिष्ट बन जाता है। यह ज़रूरी भी है क्योंकि दुनिया के सभी समाज एकसमान नहीं हैं। भूगोल भी एक जैसा नहीं है और न ही राजनीति। भारतीय बच्चे भारत की समस्त प्रकार की परिस्थितियों से निरंतर प्रभावित

होते हैं।... नाश, क्रोध, आक्रामकता, अवसाद, तनाव आदि सभी भारतीय बच्चों से जुड़ी चिंताएँ हैं। चिंताएँ विशिष्ट हैं तो समाधान भी विशिष्ट ही होंगे। इस संदर्भ में सर्वोपरि समाधान है— संस्कृतिकरण।

शिक्षाशास्त्र (व्यापक और सीमित अर्थ में) किसी भी संस्कृति को दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का काम करता है। शिक्षाशास्त्र की मूल अवधारणा की अपेक्षा है कि सबसे पहले बच्चों को समझें, उनके परिवेश और मन को समझें, उनमें विवेक उत्पन्न करें और उनमें ऐसी योग्यताओं का विकास करें जिससे वे सही और गलत में अंतर कर सकें, सही के साथ खड़े हो सकें और बुराई का विरोध कर सकें। लेकिन यह तभी संभव होगा जब समाज के बड़े अपना आदर्श प्रस्तुत करेंगे। अतः बच्चे के मन को समझना सभी के लिए बहुत ज़रूरी है, फिर चाहे वे माता-पिता हो या शिक्षक। बच्चों के जीवन में रोल मॉडल का होना बहुत महत्वपूर्ण है। उससे उन्हें दिशा मिलती है और संबल भी। लेकिन दुर्भाग्य से न तो सभी माता-पिता और न ही सभी शिक्षक इस बात से परिचित हैं और न ही (शिक्षकों की स्वयं की तैयारी यानी शिक्षक-शिक्षा ही वैसी होती है)।

एक उत्कृष्ट और वैज्ञानिक शिक्षाशास्त्र परासंज्ञान यानी *मेटा कोग्निशन* पर कार्य करता है कि आखिर बच्चे सोचते कैसे हैं? वे जैसा सोचते हैं, वे वैसा ही क्यों सोचते हैं? बच्चों की शिक्षा की अवधारणा भी यही कहती है कि बच्चों के लिए सीखने की कला अर्थात् सीखना अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि हम सब कुछ नहीं सिखा सकते। सीखना बच्चे को स्वयं है। तो क्या करें? बच्चों को सीखने के अवसर प्रदान करें। उन्हें प्रश्न करने, प्रश्न उठाने और प्रश्न खड़े करने का साहस प्रदान करें। साहस प्रदान करने का अर्थ है

कि उनमें आत्मविश्वास पैदा करें। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद का मानना है कि सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य-निर्माण' हो। सारे प्रशिक्षणों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस अभ्यास से 'मनुष्य' की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है शिक्षा... हम 'मनुष्य' बनाने वाले सिद्धांत ही चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में, 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं। यह अवधारणा संस्कृतिकरण और शिक्षाशास्त्र की समस्त अपेक्षाओं को प्रतिपादित करती है। बच्चों के साथ बातचीत करना, उन्हें विभिन्न स्थितियों का विश्लेषण करना सिखाना, अपनी बात को तर्क के साथ प्रस्तुत करना सिखाना, स्थिति और संदर्भ के अनुसार भाषा का उचित प्रयोग करना सिखाना—

यही अपेक्षित है। यह होगा कैसे? जब बच्चों को एकाग्र चित्त होना सिखा सकें। और यह कैसे होगा? जब बच्चे ध्यान का अभ्यास करेंगे तो चित्त शांत होगा ही, बच्चे स्वयं की अंतर्निहित क्षमताओं को भी जान सकेंगे। और सही अर्थ में यही शिक्षा है। शिक्षाशास्त्र को बच्चों को समग्रता में देखना और स्वीकार करना होगा। बच्चे से जुड़ी हर बात, हर सिद्धांत को समझना होगा— उसका खानपान, उसका रहन-सहन, उसकी सोच, उसके अवगुण या सीमाएँ आदि। बच्चों को उसी रूप में स्वीकार करना किसी भी शिक्षाशास्त्र का एक महत्वपूर्ण दायित्व है, जिसे सामीप्य, आत्मीयता से ही सहेजा जा सकता है। इस अर्थ में शिक्षाशास्त्र और संस्कृतिकरण परस्पर संबद्ध हैं और एक-दूसरे के दायित्व के निर्वहन में सहायक हैं, पूरक हैं।

### संदर्भ

- आप्टे, नमन शिवराम. 1969. *संस्कृत-हिंदी कोश*. मोतीलाल बनारसी राज, पटना.
- चांदकिरण, सलूजा. 2013. *शिक्षा, सामाजिक परिप्रेक्ष्य*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली.
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 2020. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति*. 2020. भारत सरकार, नयी दिल्ली.
- मारिया, मांटेसरी. 2004. *ग्रहणशील मन*. ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली.
- श्रीनिवास, एम.एन. 1969. *सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया*. यूनीवर्सिटी ऑफ़, कैलिफ़ोर्निया प्रेस, लॉस एंजेलिस.
- सिन्हा, पवन. 2015. ईश्वरीय आदेश है परवरिश, पावन चिंतन धारा. *द मैनेजमेंट ऑफ़ लाइफ़ पत्रिका*.
- . 2019. *शिक्षा के द्वंद्व*. प्रभात प्रकाशन, दिल्ली.
- <https://www.kailasheducationlcom/2019/11/sanskritikaran-arth-visheshtalhtml>
- स्वामी, विवेकानंद. 1956. *शिक्षा*. श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, मध्य प्रदेश.